जल, जंगल और जिम्मेदारी

शशि शेखर

आज विश्व पर्यावरण दिवस है और अपनी बात बचपन में सुनी हुई एक लोककथा से शुरू करना चाहता हूं। कहानी कुछ यूं है- गांव के छोर पर एक पेड़ था। विशाल हरा-भरा। बच्चे उसके चारों ओर दौड़ते। तरह-तरह के खेल खेलते। कोई उसके तने के पीछे छिप जाता। कोई उसकी शाखाओं पर चढ़ने की कोशिश करता। पेड़ मगन था। बच्चों की हंसी उसे गुदगुदाती। वह हवाओं में झूम-झूमकर नाचता।

बच्चे बड़े होते गए। कुछ ने उसके ऊपर चढ़ने का शौक पाल लिया। वे उसकी नीची टहनियों पर पांव रख-रखकर ऊपर चढ़ने का अभ्यास करने लगे। पेड़ इससे भी खुश था। उसे इन उभरते किशोरों को सिखाने का मौका मिल रहा था। वह अधीर होकर उनका इंतजार करता। उनको आता देख उसका तन-मन डोलने लगता।

कुछ दिनों बाद उसने गौर किया कि किशोरों की संख्या कम होती जा रही है। उनकी रुचियां और व्यस्तताएं अलग तरह की थीं। सिर्फ एक था, जो लगभग हर रोज आता। उसके तने से सटकर ठंडी छांह का लुत्फ उठाता। कभी पढ़ता, तो कभी गुनगुनाता। धीमे-धीमे उस नौजवान का आना भी घट गया। वह दुनियादार हो रहा था। दुनियादारों को तरह-तरह की चिंताएं और आवश्यकताएं सताती हैं। पेड़ उसे बेहद याद करता। ऊपर से जड़ लगने वाला वह वृक्ष संवेदनशील था। उसे लगता कि नौजवान आगे बढ़ रहा है और वह उसकी सफलता की कामना करते हुए उसका इंतजार करता रहता। धीमे-धीमे वह नौजवान दुनिया की भीड़ में गुम हो गया।

महीनों बाद वह आया, तो उखड़ा-उखड़ा था। पेड़ ने पूछा, क्या हुआ? मेरी टहनियां तुम्हारा इंतजार कर रही हैं। मेरी छांव तुम्हें याद करती है। जब हवा चलती है, तो मुझे तकलीफ होती है कि मैं तुम पर पंखा नहीं झल रहा। नौजवान चुप रहा। पेड़ चिंतित हो गया। उसने पूछा, कोई दिक्कत? नौजवान ने कहा कि हां, बहुत बड़ी समस्या में फंस गया हूं। मां-बाप ने विवाह तय कर दिया है। होने वाली पत्नी चाहती है कि मेरा अपना घर हो। घर कैसे बनाऊं?

वृक्ष चिंता में पड़ गया। वह उससे पहले कभी चिंतित नहीं हुआ था। पेड़ों को चिंतित होने की जरूरत नहीं पड़ती। दोनों ओर से चुप्पी पसर गई थी। कुछ देर बाद नौजवान ने धीमे से कहा कि अगर तुम्हारी इजाजत हो, तो मैं तुम्हारी लकड़ी का इस्तेमाल कर अपना घर बना लूं? वृक्ष वत्सल भाव से भरा हुआ था। उसने हामी भर दी। नवयुवक कुल्हाड़ी साथ लाया था। उसने मतलब भर की लकड़ी काट ली और चलता बना।

काफी दिन बीत गए। युवक फिर लौटा। पहले से ज्यादा परेशान। अधकटा पेड़ पुराने घावों से जूझ रहा था, पर उसका प्यार ठंडा नहीं पड़ा था। उसने पूछा, अब क्या हुआ? युवक ने कहा कि क्या बताऊं, शादी तक तो सब ठीक था। पत्नी के आने के बाद परिवार पालने की जिम्मेदारी आ गई है। गांव में कमाई का कोई जरिया है नहीं। काम-काज के लिए शहर जाना है। उसके लिए नौका चाहिए। नाव के लिए लकड़ी की दरकार है। मैं तुमसे पहले ही बहुत कुछ ले चुका हूं, पर क्या कुछ और लकड़ी दोगे? पेड़ काफी कुछ कट चुका था, पर मना नहीं कर सका। नौजवान ने फिर कुल्हाड़ा उठाया। नाव बनाने की लकड़ी मिलते-मिलते वह वृक्ष ठूंठ में तब्दील हो चुका था। युवक ने परवाह नहीं की और चलता बना। बरसों बाद एक अमीर शख्स के तौर पर वह गांव लौटा, बनी-ठनी बीवी और बच्चों के साथ। ठूंठ रास्ता जोह रहा था। उसे उम्मीद थी कि उसकी छांह में पला-बढ़ा यह व्यक्ति अपने कुटुंब से उसका परिचय कराएगा। समूचा परिवार उसके प्रति कृतज्ञता जाहिर करेगा, पर उस नए अमीर ने उसकी ओर नजर तक उठाकर नहीं देखा। जरा इस कहानी पर गौर फरमाइए।

यह इंसान और प्रकृति के रिश्ते को कितनी गहराई के साथ विश्लेषित करती है। हजारों साल से इंसान यही तो करता आ रहा है। पेड़ों के घर नहीं होते, पर इंसान उनसे घर बनाता है। दरिया कभी रुकते नहीं, पर उन पर बांध बना दिए जाते हैं। हर रोज लाखों पेड़ काटे जा रहे हैं। पहाड़ छीले जा रहे हैं। नदियों के रुख मोड़े जा रहे हैं। जानवर वनों के अंदर रहकर खुश हैं, पर हम कभी सौंदर्य प्रसाधनों के लिए और कभी शौक के लिए उनकी जान ले लेते हैं। यह पाप आदम और हव्वा की वे संतानें कर रही हैं, जिन्हें प्रकृति ने जना है, जो उसका हिस्सा हैं।

कभी सोचिए। आप जिस शहर, गांव या कस्बे में रहते हैं, उसे आपके पूर्वजों ने क्यों बसाया होगा? सिर्फ इसीलिए न कि वहां जीवन के लिए आवश्यक सभी जरूरतें उपलब्ध थीं। क्या बिना पानी के कोई शहर हो सकता है? क्या बिना हरियाली के कोई गांव हो सकता है? हम दिन-ब-दिन उन्हें नष्ट करने पर आमादा हैं। प्रकृति इससे कुपित हो रही है। हर रोज भूकंप, अतिवृष्टि, सूखे या अन्य किसी आपदा की खबर इसीलिए आती है।

दुर्भाग्य यह है कि हम अपनी परंपराओं से भी कुछ सीखने को तैयार नहीं। बच्चे को जन्म लेते ही नहलाया जाता है। इसके लिए पानी जरूरी है। हिंदू लोगों को विवाह के लिए अग्नि की आवश्यकता पड़ती है। आमतौर पर मरने के बाद दो गज जमीन या अग्नि हमारा अंतिम आश्रय बनती है। आंखें खोलने से लेकर आंख मूंदने तक इंसान को प्रकृति की आवश्यकता पड़ती है। प्रकृति के बिना न जिया जा सकता है और न मरने के बाद कोई क्रिया संपन्न हो सकती है। पहली सांस से अंतिम श्वास तक हम उससे हर पल कुछ लेते रहते हैं।

वृक्ष की तरह की यह इकतरफा मुहब्बत हमेशा नहीं चल सकती।

मैं यहां जान-बूझकर आपको आंकड़ों के मायाजाल में नहीं फंसा रहा, पर यह सच है कि साल 1975 से 2000 के बीच के 25 वर्षों में ही संसार के औसत तापमान में 0.5 डिग्री की वृद्धि हो गई थी। प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता हमारे देश में ही 1991 से 2011

के बीच करीब साढ़े सात लाख लीटर कम हो चुकी है। हवा इतनी प्रदूषित हो गई है कि चीन में सड़कों पर शुद्ध हवा की थैलियां बिक रही हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति बनने का ख्वाब पाले बड़बोले डोनाल्ड ट्रंप कहते हैं कि प्रकृति को कोई नुकसान नहीं हो रहा। हमें पर्यावरण संबंधी बंदिशों को उठा लेना चाहिए। वह अकेले नहीं हैं। उन जैसे बददिमाग अथवा बेईमान राजनेता इस विनाशलीला के दोषी हैं। क्या उन्हें सूखती नदियां, घटते जंगल और पर्वतों की बर्फ रहित चोटियां नहीं दिखतीं? हालात इतने खराब हो चले हैं कि सिकुड़ते-सिमटते जंगलों से निकलकर जानवर शहरों का रुख कर रहे हैं।

आगरा और मेरठ में तेंदुए घुस आएंगे, ऐसा किसी ने सोचा था?

जंगलों में इंसान का दखल हद पार करने लगा है। ऐसे में, जानवरों के पास और चारा भी क्या है? अगर हालात यही रहे, तो ऐसा वक्त भी आ सकता है, जब हमारे घरों के बाहर हिंसक पशु हमारा और हमारे बच्चों का इंतजार करते मिला करेंगे। क्यों नहीं, आजहम इस सवाल पर गौर फरमाएं और अपनी कुछ जिम्मेदारी तय करें? ऐसी जिम्मेदारी, जिसे आप खुद आंकेंगे। खुद को नंबर देंगे और खुद को पास या फेल करेंगे।

जागृत समाजों को जिम्मेदार लोग ही बनाते और चलाते आए हैं। अब यह आपको तय करना है कि आप क्या हैं?

हिन्दुस्तान (देहरादून) 5 June 2016